# अध्यात्मज्ञान-प्रवेशिका

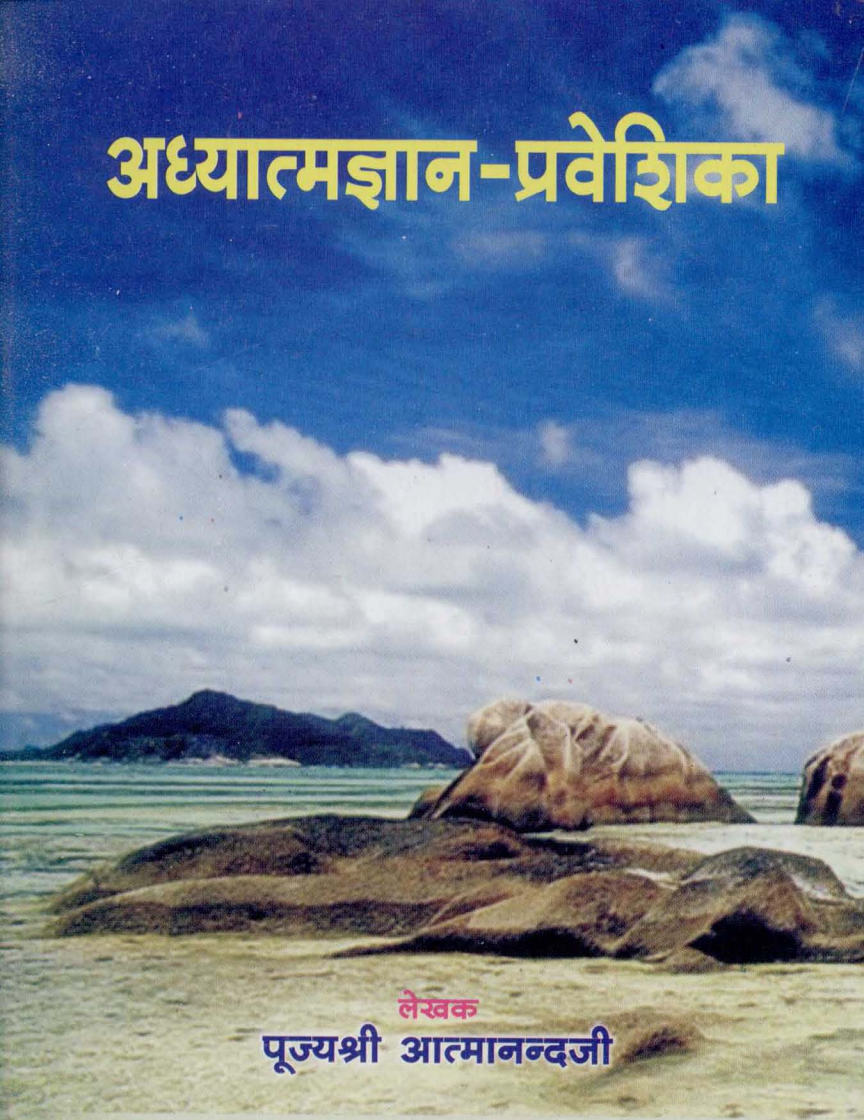


लेखक

पूज्यश्री आत्मानन्दजी



प्रकाशक

श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र

कोबा- 382007 (जि. गांधीनगर) गुजरात



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ

# अध्यात्मज्ञान-प्रवेशिका

मूल लेखक : पूज्य संत श्री आत्मानंदजी
हिन्दी अनुवादक : 'आत्मप्रिय'

प्रकाशक :
श्रीमद् राजचंद्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र,
(श्री सत्श्रुत-सेवा-साधना केन्द्र संचालित)
कोबा - 382 007 (जि. गांधीनगर) गुजरात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद् राजचंद्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र
जयंतभाई एम. शाह, प्रमुख
कोबा - 382 007 (जि. गांधीनगर)
फोन : (079) 2327 6219/483
फेक्स : (079) 2327 6142
E-mail : srask@rediffmail.com

प्रथमावृत्ति : 1000 1991
द्वितीयावृत्ति : 1000 2005

मूल्य : आठ रुपये

मुद्रक :
माणिभद्र प्रिन्टर्स
12, शायोना एस्टेट,
शाहीबाग, अमहदाबाद - 380 004
फोन : (079) 2562 6996

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# प्रकाशकीय निवेदन.

मनुष्य शाश्वत आनंदकी प्राप्ति चाहता है; और यह बात भी सर्वधर्म सम्मत है कि ऐसे आनंदकी प्राप्ति केवल आत्मज्ञानसे ही हो सकती है । वह आत्मज्ञान सत्य तत्त्वके परिज्ञानसे, वैराग्यसे और अभ्याससे क्रमशः प्रगट हो सकता है ।

तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति इस कालमें प्रत्यक्ष सद्‌गुरु–बोधके अनुपम लाभ द्वारा किन्हीं विरल पुरुषोंको ही हो सकती है । इसलिए वर्तमानमें ज्ञानप्राप्तिका मुख्य आधार पूर्वाचार्यों और संतोंकी अनुभववाणी एवं उनके द्वारा लिखे गये सिद्धान्तशास्त्र हैं।

इस प्रकारके सिद्धान्तशास्त्र और उनकी गूढ़ अनुभववाणीको वास्तविक रूपसे समझनेकी पात्रता आनेके प्रयोजनसे, अध्यात्मका अल्प और प्राथमिक कक्षाका ज्ञान पू. श्री आत्मानंदजीने इस पुस्तिकामें अवतरित किया है । बिल्कुल सरल भाषामें, मोक्षसाधनामें उपयोगी हों ऐसे केवल थोड़े मुख्य विषयोंको यहाँ प्रश्नोत्तरीके रूपमें रखा गया है, जिससे पठनकी सरलता हो, जिज्ञासुमें विचारदशा उत्पन्न हो और ऐसा होने पर उन्हें अध्यात्मज्ञानरूपी समुद्रमें प्रवेश पानेकी योग्यता प्राप्त हो । इस प्रकाशनका यही प्रशस्त हेतु होनेसे इसका नाम 'अध्यात्मज्ञान–प्रवेशिका' रखा गया है ।

तत्त्वजिज्ञासुको इस पुस्तिकाके वांचन – मननसे महाज्ञानियों और पूर्वाचार्योंके ग्रन्थ पढ़नेका सच्चा भाव जगे और उन भावोंके अनुसार उसे शुद्धात्म तत्त्वकी प्रतीति, लक्ष और अनुभवकी प्राप्ति हो ऐसी भावना करते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दी अनुवादमें जो जो त्रुटियाँ रह गईं थी, उन्हें सुधारकर शुद्ध करनेमें हमें श्री बाबूलाल सिद्धसेन जैनकी निष्काम सेवा उपलब्ध हुई है, इसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। साथ ही, पुस्तकका सुंदर मुद्रणकार्य समयपर कर देनेके लिए चंदिका प्रिन्टरीको भी धन्यवाद देते हैं।

निवेदक –
**साहित्य प्रकाशन समिति**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# मंगल भाव

साधकोंको प्राथमिक तत्त्वज्ञान होनेमें उपकारी इस लघु–पुस्तिकाका लाभ हिन्दी भाषी जनताको मिले इसलिए उसके हिन्दी अनुवादमें प्रेम–परिश्रम करनेवाले संस्थाके युवा कार्यकर श्री हरनीशभाई शाह और उसको आद्योपान्त देखकर योग्य परिमार्जन करके छपाई आदिमें सहयोग देनेवाले पं. श्री बाबूलालजी जैन – दोनों धन्यवादके पात्र हैं । इति शुभम् मंगलम् ।

आत्मानंद

# समर्पण

**अध्यात्मविद्यामें प्रवेश करानेवाली इस रचनाका आत्मलक्षपूर्वक अनुवाद करनेमें प्रेरणारूप, कार्यकी सम्पन्नतामें जिनकी प्रेरणासे चित्तस्मृति पर विविध भाव उत्पन्न होकर अवर्णनीय आनन्दका अनुभव हुआ ऐसे, और हर श्वासकी डोर जिनके हाथोंमें हो ऐसे अध्यात्मयोगी पूज्य संतश्री आत्मानन्दजीके करकमलोंमें इस अनुवादको समर्पित करके आनन्द – शान्तिका अनुभव करता हुआ....**

– आत्मप्रिय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# अनुक्रम


| | | |
|---|---|---|
| १. | मनुष्यभव | १ |
| २. | सुखका स्वरूप और उसकी प्राप्ति | ४ |
| ३. | सद्गृहस्थ | ८ |
| ४. | दानधर्म | ११ |
| ५. | गुरुका स्वरूप | १४ |
| ६. | सत्शास्त्रोंका परिचय | १७ |
| ७. | सच्चा ज्ञान और सच्ची श्रद्धा | २० |
| ८. | सदाचार | २३ |
| ९. | तप और उसकी आराधना | २६ |
| १०. | समाधिमरण | २९ |


तू चाहे जिस धर्मको मानता हो, मुझे उसका पक्षपात नहीं है। मात्र कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस मार्गसे संसारमलका नाश हो, उस भक्ति, उस धर्म और उस सदाचारका तू सेवन कर।

– श्रीमद् राजचन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# १.
# मनुष्यभव

**प्र. १ : मनुष्यभव किसे कहते हैं ?**

उ. १ : दीर्घ कालसे संसारमें भ्रमण कर रही अपनी आत्मा को, पांच इन्द्रियाँ और मन सहित इस उत्तम शरीरमें अमुक निश्चित काल तक रहनेका जो 'लायसंस' प्राप्त हुआ है वही अपनेको मिला हुआ मनुष्यभव है ।

**प्र. २ : मनुष्यभवको उत्तम क्यों कहते हैं ?**

उ. २ : अन्य शरीरोंकी अपेक्षा इस शरीरमें रहनेवाली आत्माओमें विशेष प्रकारसे सत्य–विवेक पानेकी सुविधा है इसलिए उसे उत्तम कहते हैं ।

**प्र. ३ : क्या मनुष्यभवको प्राप्त सभी आत्माओंका कल्याण होता ही है ?**

उ. ३ : हो अथवा न भी हो ।

**प्र. ४ किन मनुष्य–आत्माओंका कल्याण होता है ?**

उ. ४ : जो सत्य–पुरुषार्थ द्वारा सद्गुरु – सत्शास्त्र आदिसे अपना सच्चा स्वरूप जाननेका उद्यम करें और सच्ची श्रद्धा, सच्चे ज्ञान और सच्चे आचरणका सेवन करें, उनका कल्याण होता है ।

**प्र. ५ : किन मनुष्य–आत्माओंका कल्याण नहीं होता ?**

उ. ५ : जो मनुष्य आलस्य, निद्रा, परनिंदा और हिंसादि पापभावों में ही तन्मय रहते हैं और सत्संग – सद्विचारका सेवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं करते उनका कल्याण नहीं होता ।

**प्र. ६ : उन मनुष्योंका कल्याण नहीं होता तो क्या होता है?**

उ. ६ : ऐसे मनुष्य इस जगतमें अनेक प्रकारकी चिंता–उपाधियोसें घिर जाते हैं, मृत्यु काल तक लोभादिके वश होकर आकुलव्याकुल रहते हैं और कुगतिमरण पाकर परभवमें भी दुर्गतिके अनेक दुःखोंको पाते हैं ।

**प्र. ७ : मनुष्यभव दुर्लभ है यह कैसे जाना जा सकता है?**

उ. ७ : सर्व संतोंकी वाणीसे और सत्शास्त्रोंसे यह बात जानकर धर्मात्मा जीव इसे सत्य मानते हैं । तदुपरांत प्रत्यक्षमें भी एक–इंद्रियवाले वनस्पति आदि या तीन–इंद्रियवाले कीड़ी (चींटी) आदिकी संख्याकी अपेक्षा मनुष्योंकी संख्या बिल्कुल कम है ऐसा देख सकते हैं । इस प्रकार शास्त्रोंसे, संतोंके उपदेशसे और प्रत्यक्ष प्रमाणसे मनुष्यभवकी दुर्लभता जानी जा सकती है ।

**प्र. ८ : पूर्वाचार्यो और संतोंने मनुष्यभवको दुर्लभ रत्नचिंतामणि जैसा कहा है इसका क्या कारण है ?**

उ. ८ : (अ) आत्माके सामान्य विकासक्रममें भी मनुष्य– जितना आत्माका विकास अन्य किसी भी प्राणीमें दिखाई नहीं देता, यह तो इस युगमें हुए विज्ञान और कलाके विकास पर से हम स्पष्टरूपसे जान सकते हैं ।

(ब) जैसे कार्यकी विशेषतासे कारणकी विशेषताका निश्चय हो सकता है, वैसे अनादि कालसे अनेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीच योनियोमें भटकती इस आत्माको पाँच इंद्रियाँ और विवेकयुक्त ऐसे इस मनुष्यभवकी प्राप्ति भी विशिष्ट पुण्यके फलस्वरूप ही हुई है, ऐसा निश्चय हो सकता है ।

(क) सर्व आत्माओंकी अपेक्षा केवल मनुष्य ही सर्वोत्कृष्ट कार्य कर सकता है; और वह कार्य है – पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनंद प्रगट होनेरूप मोक्ष । इस प्रकार निज स्वभावको परिपूर्णरूपसे प्रगट करनेवाले उत्तम मोक्षरूपी कार्यकी प्राप्ति केवल इस मनुष्यभवमें ही हो सकती है, अन्य किसी भी भवमें नहीं । इसलिये इस उत्तम कार्यकी प्राप्ति के (बाह्य) कारणरूप ऐसे इस मनुष्यभवकी श्रेष्ठता है ऐसा मानना युक्ति–युक्त है ।

**प्र. ९ : इस मनुष्यभवको सफल करनेके लिये हमें क्या करना चाहिये ?**

उ. ९ : 'भला विचारो और भला करो' –यह संक्षेपमें तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है । मनुष्यभवकी सफलताके लिए तीन श्रेष्ठ अवलंबन ज्ञानीजनोने कहे हैं इनका आराधन करो । वे तीन अवलंबन हैं – सत्संग, सत्शास्त्र और सदाचार । विशेष तो आत्मानुभवी गुरुके प्रत्यक्ष समागमसे क्रमशः समझमें आयेगा । कल्याण हो !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## २.

# सुखका स्वरूप और उसकी प्राप्ति

**प्र. १ : सुख क्या है ?**

उ. १ : इंद्रियोंको जो रुचिकर हैं ऐसी वस्तुओंको ग्रहण करके जगतके जीव जिस भावका अनुभव करते हैं उसे सामान्यरूपसे सुख कहा जाता है ।

**प्र. २ : क्या यह सच्चा सुख है ?**

उ. २ : नहीं ।

**प्र. ३ : वह सच्चा सुख क्यों नहीं है ?**

उ. ३ : प्रथम तो वह क्षणभंगुर– अल्पकालीन है और दूसरा कि वह पराधीन है । जगतके मनचाहे पदार्थोंका संयोग किसीको भी कायम नहीं रहता बल्कि भाग्याधीन होने से बदलता रहता है । जब उन संयोगोंका वियोग होता है तब जगतके जीव दुःखका अनुभव करते हैं ।

**प्र. ४ : किसीको मनचाहे पदार्थ मिलते ही रहें तो उतने समय तो वह सुखी है कि नहीं ?**

उ. ४ : वास्तवमें वह सुखी नहीं है, बल्कि कल्पनासे अपनेको सुखी मानता है; क्योंकि एक इच्छित वस्तु प्राप्त हुई कि शीघ्र ही दूसरी वस्तु प्राप्त करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार जब तक इच्छाएँ होती रहती हैं तब तक जीव इच्छाओंसे आकुलव्याकुल रहा करता है और सच्चा सुख – निराकुल सुख प्राप्त नहीं कर पाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है ।

**प्र. ५ : हमको तो आकुलतामें भी दुःख नहीं लगता, सुख ही लगता है ।**

उ. ५ : जैसे किसीने सुवर्ण कभी देखा ही न हो, तो वह पीतलको ही सोना माने; परन्तु पीतल सो पीतल है और सोना सो सोना ही है । उसी प्रकार इंद्रियसुख वह इंद्रियसुख है और अतीन्द्रिय (आत्मिक) सुख सो अतीन्द्रिय सुख है । जहाँ आत्मिक सुखका अनुभव नहीं है वहाँ इंद्रिय सुखको सच्चा सुख माननेकी अज्ञानजनक प्रवृत्ति नहीं मिटती । अंतमें देह और इंद्रियाँ क्षीण होती हैं तब इंद्रियसुखकी प्राप्ति नहीं होनेसे वृद्धावस्था और मृत्युके समय जगतके जीव परवशता और अत्यंत खेदखिन्नताका ही अनुभव करते हैं ।

**प्र. ६ : तो सच्चा सुख क्या है ?**

उ. ६ : जो अपूर्व है, आत्मिक है, विषय-निरपेक्ष है, अनुपम है, अनंत है और हानिवृद्धिरहित है वह सुख सच्चा है, ऐसा निश्चय विवेकी पुरुषोंको करने योग्य है ।

**प्र. ७ : ऐसा निश्चय करनेसे क्या लाभ ?**

उ. ७ : ऐसा निश्चय करनेसे शाश्वत आनंदके मार्गकी ओर झुकनेकी योग्यता आती है और क्रमशः शाश्वत आनंद की प्राप्ति हो सकती है ।

**प्र. ८ : हमें इस बातकी प्रत्यक्ष प्रतीति कैसे हो सकती है?**

उ. ८ : शाश्वत आनंदकी प्राप्तिका आरम्भ आत्मिक गुणोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमिक विकाससे होता है । व्यवहारजीवनमें भी जितने प्रमाणमें क्षमा, संतोष, सरलता, सत्य आदि गुण वास्तविकरूपसे प्रगट हुए हों उतने प्रमाणमें आनंद और शांतिका अनुभव होता है । यदि यह बात समझमें न आती हो तो क्रोध और क्षमाके भावोंके समय अपनी अवस्थाका पृथक्करण करके देखो और निष्पक्षतासे कहो कि आप कौनसे समय अधिक स्वस्थ, प्रसन्न और आनन्दित होते हैं ?

**प्र. ९ : क्षमा आदि आत्मिक गुण सुखरूप हैं ऐसा तो लगता है परन्तु सचमुच जैसा आत्माके आनन्दका वर्णन किया गया है वैसा क्या हमें इस युगमें प्राप्त हो सकता है ?**

उ. ९ : इस युगमें भी आत्माका आनंद अपने सत्पुरुषार्थके प्रमाणमें अवश्य प्राप्त हो सकता है । यह बात शास्त्र–से, युक्तिसे और स्वानुभवसे सिद्ध हुई कहते हैं ।

**प्र. १० : ऐसे आनंदकी प्राप्तिका व्यावहारिक मार्ग क्या है यह बताइये ।**

उ. १० : अति संक्षेपमें शाश्वत आनन्दका उपाय इस प्रकार है :

(अ) सद्गुरुकी शोध करके, बार बार या निरंतर उनका सत्संग करना ।

(ब) जहाँ ऐसा सर्वोत्तम योग न बन सके, वहाँ सत्संगका आश्रय करके, सत्शास्त्रोंके अध्ययन द्वारा, आत्म–स्वरूपका यथार्थ निर्णय करना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क) व्यसनरहित, शांत, संतोषी, सादा, विनयवान, परोपकारी और दयालु बनकर सच्ची मुमुक्षुताको अपने जीवनमें प्रगटाना ।

(ड) मुमुक्षुता सहित, सद्‌गुरुके और परमात्माके गुणोंका, मुद्राका और चरित्रका बारबार स्मरण करके चित्तवृत्तिको निर्मल और एकाग्र करनेका अभ्यास करना ।

(इ) अंतमें, शुद्ध–सच्चिदानंद – परमज्ञानवान – अखंड, एकाकार, अभेद आत्मस्वरूपकी भावना करके बारबार उसमें लीन होना । सच्ची श्रद्धासे, सतत अभ्याससे, वैराग्यसे, सत्समागमसे और अडिग निश्चयसे आत्मिक आनंदकी प्राप्ति हो सकती है, अवश्य हो सकती है ।



Jain Education.International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ३.

# सद्‌गृहस्थ

**प्र. १ : सद्‌गृहस्थ किसे कहना चाहिए ?**

उ. १ : जो गृहस्थाश्रमी मनुष्य 'सत्' का अनुसरण करनेवाला हो, उसे सामान्य रूपसे सद्‌गृहस्थ कहते हैं ।

**प्र. २ : 'सत्' का अनुसरण करनेवाला इसका अर्थ क्या ?**

उ. २ : 'सत्' का विशाल अर्थ ऐसे समझना कि वह मनुष्य –

(अ) अपने लेनदेन, वचन–व्यवहार अथवा अन्य लौकिक कार्य करते समय जितना सम्भव हो सत्यरूपसे चले ।

(ब) अपने जीवनविकासके लिये सत्–देव– गुरु–धर्म की शरण स्वीकारे ।

(क) परमार्थसे 'सत्'–स्वरूप ऐसी अपनी आत्मा की पहचानका प्रयत्न करता हो ।

**प्र. ३ : अपने जीवनमें वह कौनसे न्यायको अनुसरता है ?**

उ. ३ : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ऐसे चार प्रकारके पुरुषार्थ को अविरोधरूपसे साधते हुए भी, धर्मपूर्वकके अर्थोपार्जनको और न्यायपूर्वककी जीवन इच्छाओंको अनुसरता है । ऐसा होनेसे उसका जीवन सहजरूपसे धर्मनिष्ठामय बन जाता है ।

**प्र. ४ : उसकी दैनिक जीवनचर्यामें धर्मके कौन कौनसे मुख्य अंग होते हैं ?**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ. ४ : लगभग डेढ घंटा प्रभुकी भक्ति–पूजा, एक–डेढ घंटा सत्शास्त्रोंका अध्ययन और लगभग पौन घंटा तत्त्वका चिंतन; इतनी धर्मसाधना वह नित्य उत्साह और एकाग्रतासे करता है। सत्पात्रको दान देना और प्रसंगोपात्त सत्समागमका लाभ लेना वह कभी भी नहीं चूकता।

**प्र. ५ : उसका गृहव्यवहार और अर्थोपार्जन किस प्रकारका होता है ?**

उ. ५ : परिवारमें संगठनकी वृद्धि करता है। किसीकी भूल हो जाय तो मीठा उपालम्भ देकर क्षमा कर देता है। अपनी विचक्षणतासे परिवारको विनयी बनाता है। स्वच्छता, कर्तव्य, आरोग्य और महत्तामें सावधानी रखता है। व्यापार–धंधेकी लेनदेनमें यथासम्भव सत्यनिष्ठा रखता है। कहे हुए वचनका अवश्य पालन करता है। उसके घरमें संस्कारपोषक साहित्य और ललित कलाओंको प्रोत्साहन मिलता है और अतिथियोंको योग्य सत्कार प्राप्त होता है। आर्यपुरुषोंका ऐसा गृहस्थाश्रम इस लोकमें सुखशांति, सुयश और परलोकमें उत्तम गतिका कारण होता है।

**प्र. ६ : पूर्वाचार्योंने बुद्धिमान पुरुषोंके गृहस्थाश्रमको कैसा कहा है ?**

उ. ६ : निम्नलिखित गुणोंसे जो विभूषित हो वह बुद्धिमान पुरुषों का गृहस्थाश्रम है; और जहाँ उससे विपरीत प्रवर्तन हो वहाँ मोहरूपी कैदमें फँसे हुऐ कैदीके रूपमें उस गृहस्थको जानना, ऐसा आचार्योंका उपदेश है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) परमात्मा (जिन) की भक्ति ।

(२) गुरुओंका विनय ।

(३) सद्‌गुणसंपन्न धर्मी जीवों पर प्रीति ।

(४) सत्पात्रको भक्तिपूर्वक दान और अन्यत्र अनुकंपादान ।

(५) तत्त्वज्ञानका अभ्यास ।

(६) लिये हुए व्रतोंका दृढतासे पालन ।

(७) शुद्ध श्रद्धाका अंगीकार करना ।

**प्र. ७ : सद्‌गृहस्थके संयमधर्मका वैज्ञानिक स्वरूप क्या है?**

उ. ७ : (अ) पांच अणुव्रत
तीन गुणव्रत
चार शिक्षाव्रत
इन बारह व्रतोंको गृहस्थका एकदेशसंयम कहते हैं ।

(ब) इन्द्रियोंके, मनके और प्राणीघातके विशेष विशेष संयमको साधनेवाली ग्यारह प्रतिमाएँ या पडिमाएँ भी गृहस्थके संयमका श्रेणीबद्ध निरूपण करती हैं। आचार्योंके लिखे हुए श्रावकाचारके ग्रंथोंके आधार पर आगेके वर्णनमें हम उन्हें देखेंगे ।

**प्र. ८ : गृहस्थधर्मके सम्यक् पालनका अंतिम फल क्या है ?**

उ. ८ : गृहस्थधर्मकी आराधना करते हुए जब संयमके प्रति अत्यन्त रुचि बढ़ जाती है तब मुनिपदके महाव्रतोंको अंगीकार करके मोक्षपदकी उग्र आराधनासे मोक्षकी प्राप्ति होती है ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

## ४.

# दान धर्म

**प्र. १ : दानका क्या अर्थ है ?**

उ. १ : स्वयंके और अन्यके कल्याणके लिये अपनी धनादि संपत्तिको दे देना उसे दान कहते है ।

**प्र. २ : दानसे कल्याण कैसे होता है ?**

उ. २ : दान देनेसे स्वयंका लोभ घटे, पात्रता बढ़े, स्वयं पुण्यसंचय हो और साधकोंको सुविधा उपलब्ध होनेसे वे भी धर्म–आराधनामें निश्चिंत होकर प्रवृत्त हो सकें।

**प्र. ३ : दानसे समाजकल्याण होता है ?**

उ. ३ : योग्य स्थान पर दान देनेसे, एवं उसका सदुपयोग होनेसे समाजोपयोगी कार्य भी होते हैं । अनाथालय, विश्रामविश्राम, कोलेज, शालाएँ, होस्टेल, वृद्धाश्रम, पुस्तकालय, टाउनहोल, व्यायामशालाएँ और निराधार मनुष्यों एवं पशुओंके रहनेके स्थानोंका निर्माण होनेसे समाज–सुखकी वृद्धि होती है ।

**प्र. ४ : दानके कितने प्रकार कहे हैं ?**

उ. ४ : दानके मुख्य पांच प्रकार कहे हैं :

आहारदान, विद्यादान, औषधदान, अभयदान (किसीको अपनेसे भय न पहुँचाना) और वसतिदान (त्यागी पुरुषों को रहनेको स्थान देना) ।

**प्र. ५ : दाता पुरुषमें कौनसे लक्षण होने चाहिएँ ?**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ. ५ : दाताके मुख्य सात लक्षण हैं :–

१ श्रद्धान, २ संतोष, ३ भक्ति, ४ विज्ञान, ५ अलुब्धता, ६ क्षमा और ७ शक्ति ।

**प्र. ६ : दान किसको देना चाहिए ?**

उ. ६ : दान सुपात्रको देना चाहिए ।

**प्र. ७ : सुपात्र किसे समझना ?**

उ. ७ : ज्ञान और सयमकी आराधनामें उद्यमी आत्माओंको सुपात्र समझना ।

**प्र. ८ : सुपात्रको दान किस तरहसे देना चाहिए ?**

उ. ८ : अंतरमें भक्तिभाव सहित, विनयपूर्वक, ज्ञान और संयमकी आराधनाकी वृद्धि हो ऐसी योग्य वस्तुओंका दान देना चाहिए ।

**प्र. ९ : सुपात्र न मिले तो दान देना चाहिए या नहीं ?**

उ. ९ : सुपात्र न मिले तो भी करुणासे दान अवश्य देना ही चाहिए । गरीबको, भूखेको, प्यासेको या अन्य दुःखोंसे पीड़ितोंको प्रीतिपूर्वक दान देना उसे करुणादान या अनुकंपादान कहते हैं ।

**प्र. १० : सबसे श्रेष्ठ दान कौनसा है ?**

उ. १० : सबसे श्रेष्ठ दान ज्ञानदान है, जिसको कभी विद्यादान या धर्मदान भी कहा जाता है ।

**प्र. ११ : वह क्यों श्रेष्ठ है ?**

उ. ११ : अन्य दानोंसे जगतके जीवोंको थोड़े समयके लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुखशांति मिलती है, परन्तु ज्ञानदानकी सचमुच प्राप्ति हो जाय तो सदाकालके लिए परम आनंदकी प्राप्ति होकर संसारपरिभ्रमणसे हमेशाके लिए छुटकारा हो जाता है।

**प्र. १२ : ज्ञानदान कौन कर सकता है ?**

उ. १२ : उत्तम आत्मज्ञान और सच्चारित्रके धारक सद्‌गुरु – संतोमें ही ऐसे महान कार्य करनेकी योग्यता है ।

**प्र. १३ : दानकी महिमा कैसी है ?**

उ. १३ : इस लोकमें और परलोकमें अनेक प्रकारकी कल्याण – परंपराओंको प्राप्त कराकर, मोक्षकी भी प्राप्ति करानेवाला ऐसा यह विवेकपूर्वकका दान गृहस्थोंका एक श्रेष्ठ धर्म है । इसलिये उसमें अवश्य प्रवृत्त होना चाहिए ऐसा आचार्योंका उपदेश है ।

❁

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ५.
# गुरुका स्वरूप

**प्र. १ : गुरुके मुख्य कितने प्रकार हैं ?**

उ. १ : गुरुके मुख्य तीन प्रकार हैं :

(अ) स्वयं तरै और अपने आश्रितोकों भी तारे, वह उत्तम काष्ठ समान गुरु जानना ।

(ब) दूसरे कागज स्वरूप – जो पुण्यसंचय करें लेकिन स्वयं तैर नहीं सकते और अन्यको तार नहीं सकते।

(क) तीसरे पत्थर स्वरूप – जो स्वयं डूबे और अपने आश्रितोंकों भी डुबावें ।

**प्र. २ : सद्‌गुरुका क्या अर्थ है ?**

उ. २ : जो महात्मा, जिज्ञासुओंको अध्यात्मसाधनामें विशिष्ट मार्गदर्शन देनेकी योग्यतावाले हों, उन्हें सद्‌गुरु कहते हैं।

**प्र. ३ : वे योग्यतादर्शक लक्षण कौनसे हैं ?**

उ. ३ : (१) आत्मज्ञान – आत्मसाक्षात्कार ।

(२) समदर्शिता – समता, समाधि ।

(३) आत्मार्थप्रेरक बोधको देनेवाले होते हैं ।

(४) समस्त सत्शास्त्रोंके रहस्यके अद्‌भुत ज्ञाता होते हैं।

**प्र. ४ : सद्‌गुरु और सत्पुरुष एक ही हैं ?**

उ. ४ : इन दोनोंमें अमुक समानता होने पर भी सद्‌गुरुका पद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत ऊंचा है। आत्माकी सच्ची पहचानसे सत्पुरुष बना जा सकता है परन्तु सद्गुरु होनेके लिए इसके अतिरिक्त, ऊपर बताये वैसे अनेक गुणोंकी आवश्यकता होती है।

**प्र. ५ : ऊपर बताये वैसे समस्त लक्षण न हों तो सद्गुरु कह सकते हैं ?**

उ. ५ : ऊपर बताये वे मार्गप्रभावक विशिष्ट सद्गुरुके लक्षण हैं और वे ही महान गुरुपदको सुशोभित कर सकते हैं। गुणोंमें जितनी न्यूनता (कमी) होती है उतनी सद्गुरुमें भी न्यूनता समझना।

**प्र. ६ : सद्गुरुके उपदेश बिना ज्ञान प्राप्त हो सकता है ?**

उ. ६ : सद्गुरुके उपदेश बिना ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। कोई पूर्वभवके आराधक स्वयं ज्ञान प्राप्त करें ऐसा कह सकते हैं, परन्तु उनको भी पूर्व भवमें सद्गुरुका उपदेश मिला होता है।

**प्र. ७ : सद्गुरु आत्मज्ञानप्राप्तिमें कैसे उपकारी हैं ?**

उ. ७ : (अ) प्रथम तो स्वयं आत्मज्ञान प्राप्त किया है, इसलिए उन्हें साधनामार्गका स्वयं अनुभव होता है।

(ब) विशिष्ट प्रज्ञावान होनेसे मोक्ष मार्गका सर्वतोमुखी ज्ञान उन्हें होता है। जैसे सूर्य अंधकारको नष्ट कर देता है, वैसे सद्गुरुकी अपूर्व अनुभववाणी द्वारा साधक–शिष्यके अज्ञान– अंधकारका और सर्व प्रकारके संशयोंका व्युच्छेद हो जाता है।

(क) दिव्यत्वसे व्याप्त ऐसे श्री सद्गुरुका समस्त व्यक्तित्व अलौकिक होता है। उनकी सौम्य मुद्रा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्दोष स्वभाव, प्रेमपूर्ण व्यवहार, निःस्पृहता, सहजवाणी, कठिन निजचर्या, प्रसन्नता, परहितनिरतता और अप्रमत्त आत्मखोज, उपदेश न देते समय भी निरंतर साधक–शिष्योंको एक अद्‌भुत प्रेरक बल और ध्येयनिष्ठा प्रदान करते हैं ।

इन विविध प्रकारोंसे सद्‌गुरु साधक–शिष्योंको उपकारी होते हैं । उनके उपकारका वर्णन करनेमें वाणी असमर्थ है, इसलिये भव्य जीवोंको उनके सान्निध्यके लाभका स्वयं अनुभव करनेका अनुरोध है ।

**प्र. ८ : सद्‌गुरु न मिलें तो क्या करना ?**

उ. ८ सत्यकी प्राप्तिके लिए निरंतर खोज चालू रखकर, यथासंभव मुमुक्षुओंके संगमें रहकर, सदाचारपूर्वक तत्त्वका अभ्यास करना । तीर्थयात्रा आदिके समय विशेषरूपसे सद्‌गुरुकी खोज करनी चाहिए, क्योंकि इस युगमें आत्मज्ञानी महात्मा विशेषकर एकांतस्थानमें रहकर अपनी आत्मसाधना आगे बढ़ाते रहते हैं । एकनिष्ठासे सद्‌गुरुकी खोज की जाय तो शीघ्र या देरीसे अवश्य गुरुकी भेंट होती है और साधक, सत्पुरुषार्थ द्वारा उत्तम ज्ञानसंयमरूप समाधिके आनंदको प्राप्त करता है ।

**प्र. ९ : सद्‌गुरुकी भक्ति क्यों करनी चाहिए ?**

उ. ९ : सद्‌गुरुकी भक्ति करनेसे उनकी आत्माकी चेष्टाके प्रति वृत्ति रहती है, अपूर्व गुण दृश्यमान होकर अन्य स्वच्छंद मिटता है और सहजमें आत्मबोध होता है । इस प्रकार सर्वतोमुखी कल्याणका कारण होनेसे सद्‌गुरुकी भक्ति अवश्य करनी चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ६.

# सत्शास्त्रोंका परिचय

**प्र. १ : सत्शास्त्र क्या हैं ?**

उ. १ : आत्मज्ञानादि पवित्र और आनंदमय भावोंको प्राप्त हुए महात्माओंके वचन ही सत्शास्त्र हैं । उन सत्शास्त्रोंके मूल स्रोत श्रीसर्वज्ञ परमात्मा हैं, क्योंकि उनके परिपूर्ण ज्ञानसे उद्‌भूत ज्ञानके आधार पर ही प्रज्ञावंत पूर्वाचार्योंने और ज्ञानी महात्माओंने शास्त्रादिककी रचना की है ।

**प्र. २ : सत्शास्त्रोंका परिचय क्या है ?**

उ. २ : शांतरसकी जिसमें मुख्यता है, शांतरसके प्रयोजनरूप जिसका समस्त उपदेश है, सर्वरस शांतरसगर्भित जिसमें वर्णित हैं, ऐसे शास्त्रोंका परिचय ही सत्शास्त्रोंका परिचय है ।

**प्र. ३ : ज्ञानी और सर्वज्ञ परमात्माका ज्ञान समान है ?**

उ. ३ : जातिकी अपेक्षासे देखें तो, दोनोंका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है । ज्ञानीका ज्ञान अल्प और परोक्ष है जबकि सर्वज्ञका ज्ञान तो परिपूर्ण और सकलप्रत्यक्ष है । ऐसा होने पर भी दोनोंके वचन केवल वीतरागताका ही उपदेश देते हैं, और तत्त्व समझाते हैं – सत्यस्वरूप इस अपेक्षासे समान हैं ।

**प्र. ४ : कैसे शास्त्रोंका परिचय करना चाहिए ?**

उ. ४ : (१) जिसमें वीतरागताका उपदेश दिया हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) जिसके पढ़नेसे उपशम–वैराग्यकी वृद्धि हो ।

(३) जिसमें मतमतांतरकी चर्चा द्वारा वादविवाद और संप्रदायवादरूपी पक्षपातका पोषण करनेवाला कथन न हो ।

(४) जिसमें स्पष्टरूपसे वस्तुका स्वरूप प्रत्यक्ष–परोक्ष प्रमाणोंसे सिद्ध किया हो ।

(५) जिसमें पूर्वापर विरोध न हो और एकांतका हठाग्रह न हो ।

(६) जिसमें शुद्ध आत्मज्ञान और सदाचारका उपदेश हो ।

(७) विविध कक्षाके साधकोंके दोष बताकर, वे दोष किस प्रकारसे दूर हों इसके उपायोंका जिसमें स्पष्टरूपसे निरूपण करके आत्मशुद्धिके मार्गका प्रकाश किया हो ।

**प्र. ५ : सत्शास्त्रोंका परिचय किस तरह करना ?**

उ. ५ : शास्त्रोंको पढ़ना और समझना । जहाँ समझमें न आवे वहाँ विशेष ज्ञानीसे पूछना । जो अर्थ समझमें आया हो उसका बारबार स्मरण–चिंतन करना । अधिक उपयोगी–बोधको नोंधपोथीमें अवश्य लिखना । शास्त्रका पारायण करना और उसका उपदेश करना । ये सब शास्त्र–स्वाध्यायके ही प्रकार हैं । उत्तम स्तुतियोंको – पदोंको भी कंठस्थ करना ।

**प्र. ६ : वैसा परिचय करनेके लिये नियम लेना चाहिए ?**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ. ६ : हाँ । नियमपूर्वक और नियमित रूपसे, सत्संगका अवलंबन लेकर ज्ञानकी प्राप्ति करना साधकके लिये अतिशय कल्याणकारी है । कुछ शास्त्र इधर-उधरसे पढ़ लेनेसे कल्याण नहीं है, अपितु धर्मके मुख्य तत्त्वोंको अच्छी तरहसे जानना और उनका श्रद्धान करना चाहिए। तब इसके फलस्वरूप विवेक उत्पन्न होनेसे साधकका अवश्य कल्याण होता है ।

**प्र. ७ : सत्शास्त्रोंके परिचयका फल क्या है ?**

उ. ७ : सद्गुरु या सत्संगका आश्रय करके सत्शास्त्रका परिचय करनेसे अल्प कालमें महान फलकी प्राप्ति होती है । जब सद्गुरुका योग न हो तब सत्शास्त्रोंका अवश्य अवलंबन लेना, कि जिससे परमार्थमार्गमें चित्त लगा रहे।

शास्त्रोंका माहात्म्य अपार है । परोक्ष वस्तुओंका ज्ञान करानेवाले, अनेक संशयोंका छेद करनेवाले, सत्य तत्त्वोंको दिखानेवाले ये शास्त्र ही हैं । विशेषमें, वे अनुभवी पुरुषोंके वचन होनेसे साधकको मोक्षमार्गमें परम कल्याणरूप और प्रत्यक्ष मार्गदर्शक जैसा कार्य करनेमें भी समर्थ हैं ।

इस प्रकार, प्राथमिक मुमुक्षुताकी प्रगटतासे लेकर अंतमें पूर्ण आत्मसमाधि प्राप्त करानेमें उत्तम प्रेरणा देनेकी शक्ति जिनमें है ऐसे शास्त्र, साधकको मोक्षमार्गमें एक अद्भुत और अनिवार्य अवलंबन हैं ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ७.

# सच्चा ज्ञान और सच्ची श्रद्धा

**प्र. १ : सच्चे ज्ञानका क्या अर्थ है ?**

उ. १ : जगतके पदार्थ सचमुच जैसे हैं उसी स्वरूपमें उन्हें यथार्थरूपसे जानना वह सच्चा ज्ञान है; और वैसी ही अंतरंग मान्यता करना वह सच्ची श्रद्धा है ।

**प्र. २ : हम लोहेको लोहा, सोनेको सोना आदि प्रकारसे जानते हैं तो हमारा ज्ञान सच्चा है क्या ?**

उ. २ : यहाँ परमार्थका प्रयोजन है, इसलिये उन पदार्थोंको जानते हुए उनमें अगर मोह उत्पन्न हो जाय तो वह ज्ञान, रागमिश्रित होनेसे अज्ञान है (जिसे कुज्ञान भी कहते हैं)। आत्मज्ञान होनेसे पहले, किसी भी जीवका अन्य पदार्थोंका ज्ञान परमार्थसे सच्चा नहीं होता ।

**प्र. ३ : ज्ञानीको भी राग होता है तो उसके ज्ञानको आप सच्चा क्यों कहते हैं ?**

उ. ३ : ज्ञानीने आत्माको यथार्थरूपसे जाना है और अनुभव किया है, इसलिये जगतके जीवोंके समान राग उनको होता ही नहीं है । ज्ञान और रागको वे अलग अलग स्वभाव जानते हैं इसलिये ऐसे भेदज्ञानकी विद्यमानतामें उनके ज्ञानको सच्चा ज्ञान कहते हैं । ऐसा होनेपर भी जब तक जितना राग है तब तक उतनी मात्रामें अज्ञानके अंश हैं ऐसा सापेक्षरूपसे जानना ।

**प्र. ४ : अध्यात्मपरिभाषामें सच्चा ज्ञान किसे कहते हैं ?**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**उसकी साधना क्या है ?**

उ. ४ : 'देहादि जड़ पदार्थोंसे, मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूपी आत्मा सचमुच भिन्न हूँ' – ऐसा सद्गुरुके उपदेशसे यथार्थरूपमें जानने और अभ्यास करनेसे उसका ज्ञान क्रमशः सम्यक् हो जाता है । इस प्रकार स्व–परका विवेक, आत्मा–अनात्माका विवेक, सारासारका विवेक जिसके अंतरमें प्रगट होता है उसे सच्चा ज्ञान होता है ।

जैसे तलवार और म्यान अलग हैं, दूध और पानी अलग हैं, गंदे पानीकी मलिनता और पानी अलग हैं और सुवर्णरजमें सोना और मिट्टी अलग हैं, वैसे देह और आत्माकी भिन्नता, लक्षण द्वारा जाननी चाहिए । और जानकर अभ्यास करना चाहिए । देहाध्यास कम करना और आत्माभ्यास बढ़ाना इस प्रकारकी सतत तत्त्वाभ्यासरूप साधना कल्याणकारी है ।

जो ज्ञान कर्मबंधके कारणोंको केवल जानता है, परन्तु उससे निवृत्त नहीं होता वह ज्ञान भी अज्ञान ही है । 'जिसके पढ़नेसे, समझनेसे और विचारनेसे आत्मा विभावसे, विभावके कार्योंसे और विभावके परिणामसे विरक्त न हुआ, विभावका त्यागी न हुआ, विभावके कार्योंका और विभावके फलका त्यागी न हुआ; वह पढ़ना, वह विचारना और वह समझना अज्ञान है । विचारवृत्तिके साथ त्यागवृत्ति उत्पन्न करना वही विचार सफल है, ऐसा ज्ञानीका परमार्थ कथन है ।'

इस प्रकारसे, जैसे जैसे सच्चे ज्ञानकी साधना की जाय, वैसे वैसे आत्माकी शुद्धि बढ़े और यही सच्चा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान (ज्ञानमार्ग) है ऐसा जानो ।

**प्र. ५ : सच्चा ज्ञान हुआ है यह कैसे ज्ञात हो ?**

उ. ५ : जिसे सच्चा ज्ञान प्रगट हुआ हो उसकी वृत्ति बाह्यमें जाती हुई रुके, संसारकी प्रीति सचमुच कम हो, सत्य को सत्य जाने, जिसके द्वारा आत्मामें गुण प्रगट हों उसका नाम ज्ञान ।

ऐसा जीवन बने तो समझना कि ज्ञान प्रगट हुआ है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ८.

# सदाचार

**प्र. १ : सदाचार किसे कहते हैं ?**

उ. १ : उत्तम आचार और विचारवाले पुरुषोंका वह आचरण कि जो सत् स्वरूप ऐसे 'आत्मा' की प्राप्तिमें सहयोगी कारण बने उसे सदाचार कहते हैं । उसका दूसरा नाम सामान्य नीति भी है ।

**प्र. २ : इस बातको विशेष रूपसे स्पष्ट समझाकर उसका व्यावहारिक स्वरूप बताइय ।**

उ. २ : जहाँ बड़े दुर्गुण हों, जहाँ असत्यके प्रति रुचि हो, जहाँ अंतरमें तीव्र पापभाव विद्यमान हों और जहाँ इन्द्रियों और मनकी प्रवृत्तिका स्वच्छंदरूपसे अन्यायपूर्वक प्रवर्तन हो, वहाँ शीतल आत्मिक सुख प्रगट नहीं होता और इसलिए आत्मज्ञान भी नहीं होता । निम्नलिखित जीवनचर्या बनानेसे सामान्य सदाचारका पालन हो सकता है । इसलिये मुमुक्षुको अत्यंत प्रयत्नपूर्वक उसे सिद्ध करना आवश्यक है :

(१) किसी भी मनुष्यके साथ विश्वासघात करना नहीं।

(२) किसी पर झूठा दोष लगाना नहीं ।

(३) लेनदेनमें बुरे आशयसे कम- अधिक देना नहीं; मिश्रित करके देना नहीं ।

(४) छलकपटसे बुद्धिपूर्वक किसीके साथ धोखा करना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं ।

(५) जुआ, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यासंग, शिकार (संकल्पपूर्वक त्रसजीवकी हिंसा), बडी चोरी और परस्त्रीगमन; इन सात वस्तुओंका सर्वथा त्याग करना ।

(६) सरकारके नियमानुसार कर आदि भरनेमें नियमित और प्रामाणिक होना ।

**प्र. ३ : नीति और सामान्य सदाचारमें अन्तर है ? नीतिके पालनसे क्या लाभ ?**

उ. ३ : नीतिके मुख्य छह प्रकार शास्त्रोंमें कहे गये है । उनमें यहाँ जो प्रकार बताया है उसे सामान्य नीति कहते हैं । इस नीतिके आश्रयसे पात्रता अर्थात् योग्यता प्रगट होने पर उस जीवको सद्गुरुके उपदेशसे विशेष सत्पुरुषार्थ करने पर आत्मिक धर्म प्रगट होता है ।

**प्र. ४ : योग्यता देनेवाली इस नीतिके बिना क्या सत्य धर्म प्रगट नहीं हो सकता ?**

उ. ४ : योग्यताके बिना धर्म प्रगट नहीं हो सकता, इसीलिये कहा है :–

**'दशा न एवी ज्यां सुधी, जीव लहे नहि जोग,**
**मोक्षमार्ग पामे नहीं, मटे न अंतर रोग' ।**

(आत्मसिद्धिशास्त्र : ३९)

**प्र. ५ : गृहस्थव्यवहारमें प्रर्वतमान मुमुक्षु जीवको इस नीतिधर्म के पालनमें कैसी दृष्टि रखनी चाहिए ?**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ. ५ : जो मुमुक्षुजीव गृहस्थव्यवहारमें प्रवर्तमान हो उसे तो अखंड नीतिका मूल प्रथम आत्मामें स्थापित करना चाहिये, नहीं तो उपदेशादिकी निष्फलता होती है। द्रव्यादि उत्पन्न करने आदिमें सांगोपांग न्यायसंपन्न रहना उसका नाम नीति है। इस नीतिके छोड़ते हुए प्राण–त्याग जैसी दशा आनेपर त्याग वैराग्य सच्चे स्वरूपमें प्रगट होते हैं और उसी जीवको सत्पुरुषके वचनोंका तथा आज्ञाधर्मका अद्‌भुत सामर्थ्य, माहात्म्य और रहस्य समझमें आता है। जो जीव कल्याणकी आकांक्षा रखता है, और प्रत्यक्ष सत्पुरुषका निश्चय है, उसे प्रथम भूमिकामें यह नीति मुख्य आधार है। कठिन बात है इसलिये नहीं बन सकती, यह कल्पना मुमुक्षुको अहितकारी है और त्यागने योग्य है।

**प्र. ६ : सदाचारमें कैसे स्थिर हुआ जाय यह संक्षेपमें बताइये।**

उ. ६ : सभ्यता, सज्जनता, सद्‌भावना, साहस और सत्कृत्योंमें तत्पर रहनेसे सदाचारी बना जा सकता है, जो सतत कर्तव्यरूप है, ऐसी महाज्ञानियोंकी आज्ञा है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ९.

# तप और उसकी आराधना

**प्र. १ : तप किसे कहते हैं ?**

उ. १ : इच्छाका निरोध करनेको तप कहते हैं ।

**प्र. २ : तपके कितने प्रकार हैं ?**

उ. २ : तपके बारह प्रकार हैं । छह प्रकारके बाह्य तप और छह प्रकारके अंतर तप ।

**प्र. ३ : बाह्य तप कौन–कौन से है ?**

उ. ३ : उपवास, ऊणोदरी (भूखसे कम खाना) वृत्तिका संक्षेप, रसका त्याग, एकांतस्थानसेवन और कायक्लेश ।

**प्र. ४ : अंतरतप कौन–कौनसे हैं ?**

उ. ४ : प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य (रोगी साधर्मीओंकी सेवा–शुश्रूषा) स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग (ममताका त्याग)।

**प्र. ५ : किस तपके प्रति विशेष लक्ष देना चाहिए ?**

उ. ५ : सभी प्रकारके तप अंगीकार करने योग्य हैं, परन्तु स्वाध्यायरूपी तपमें प्रवर्तन करनेसे सबसे अधिक लाभ है और कष्ट बिल्कुल कम है । इस तपमें उद्यमशील होनेसे आत्माका, बंधका, मोक्षमार्गका, मोक्षका, भक्ष्य–अभक्ष्यका, एवं त्यागने योग्य, अंगीकार करने योग्य और जानने योग्य तत्त्वोंका ज्ञान होता है, जिससे मोक्षमार्गमें अच्छी तरहसे प्रवर्तन हो सकता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे अनेक कारणोंसे आचार्योंने स्वाध्यायको श्रेष्ठ तप कहा है और उसमें प्रवर्तन करनेका गृहस्थ और त्यागी दोनोंको उपदेश दिया है ।

**प्र. ६ : स्वाध्यायके अतिरिक्त अन्य तप करने चाहिएँ या नहीं ?**

उ. ६ : तप तो सभी प्रकारके करने योग्य हैं । अपनी जितनी शक्ति हो उतना तप करना चाहिए । फिरभी तपका अनुष्ठान करते समय अपनी शक्ति नहीं छिपाना । कौन किस प्रकारका तप करे वह महत्त्वपूर्ण नहीं है, किन्तु समझ लेना चाहिए कि मुख्य तप तो अंतर–तप है । और जो बाह्य तप हैं वे अंतर–तपके सहकारी हैं । अंतर–तप आत्माकी परिणतिके साथ सीधा संबंध रखता है, इसलिये चित्तकी (उपयोगकी) शुद्धिके लिए अंतर–तपकी मुख्यता है । 'उपयोगकी शुद्धिके अनुरूप मोक्ष होता है, केवल बाह्य देहादिकी चेष्टाके अनुसार मोक्ष नहीं होता' – ऐसा स्पष्ट जाननेसे दृष्टि विवेकसंपन्न होती है और सम्यक् तपमें प्रवर्तन होता है ।

**प्र. ७ : तपकी क्या महत्ता है ?**

उ. ७ : पूर्वाचार्योंने चार प्रकारकी आराधनाको मोक्षका कारण कहा है – सच्ची श्रद्धा, सच्चा ज्ञान, सच्चा आचरण और सच्चा तप । इस चतुर्विध आराधनासे चार गति का नाश होकर पंचमगति (सिद्ध–अवस्था) प्राप्त कर सकते हैं । इस प्रकार मोक्षकी आराधनामें तप एक महत्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का अंग है ।

**प्र. ८ : किस प्रकार तप करनेसे आत्माका कल्याण होता है ?**

उ. ८ : "जब जब तपश्चर्या की जाय तब तब स्वच्छंदसे नहीं करनी, अहंकारसे नहीं करनी, लोगोके लिए नहीं करनी, जीवको जो कुछ भी करना वह स्वच्छंदसे नहीं करना ।

यहाँ तो लोकसंज्ञा (लौकिक दृष्टि) से, ओघसंज्ञासे (समझे बिना), मानकी पुष्टिके लिए, अपनी पूजाके लिए, पदकी महत्ताके लिए (पदका महत्त्व बतानेके लिए) श्रावकादिको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिए या ऐसे ही दूसरे कारणोंसे जप–तपादि, व्याख्यानादि करनेकी प्रवृत्ति बन गई है, उसमें किसी प्रकारका आत्मार्थ नहीं है, अपितु वह आत्मार्थमें प्रतिबन्धरूप है ।

कोई भी क्रिया, जप, तप और शास्त्रअध्ययन करके एक ही कार्य सिद्ध करना है, वह यह कि जगतकी विस्मृति करनी और सत्के चरणमें रहना, और यह एक ही लक्ष रखकर प्रवृत्ति करनेसे जीवको स्वंय क्या करना योग्य है, और क्या करना अयोग्य है, यह समझमें आता है, समझमें आता जाता है । इस लक्ष्यको मुख्य किये बिना जप, तप, ध्यान या दान किसीकी भी यथायोग्य सिद्धि नहीं है और तब तक ध्यानादिक नहिवत् कामके हैं ।"



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## १०.

# समाधिमरण

**प्र. १ : समाधिमरणका क्या अर्थ है ?**

उ. १ : आत्मज्ञानादिको प्रगट करना उसका नाम बोधि और प्राप्त किये हुए आत्मज्ञानादिको आत्मजागृतिपूर्वक पुरुषार्थ द्वारा मृत्युके समय भवांतरमें साथ ले जाना उसे समाधिमरण कहते हैं ।

**प्र. २ : समाधिमरण किसको होता है ?**

उ. २ : सच्चा समाधिमरण केवल ज्ञानीपुरुषको ही हो सकता है।

**प्र. ३ : मुमुक्षुको प्रभुस्मरणपूर्वक जो मरण होता है वह समाधिमरण है या नहीं ?**

उ. ३ : ऐसे मरणको सुगतिमरण कहते हैं । वह मुमुक्षु साधना के संस्कार साथमें ले जाता है, परन्तु आत्मज्ञानादि प्रगट ही नहीं हुए हैं तो उन्हे अन्य भवमें कैसे साथमें ले जाय? अतः मुमुक्षुको सुगतिमरण होता है ऐसा परमार्थसे जानना ।

**प्र. ४ : समाधिमरणके कितने प्रकार हैं ?**

उ. ४ : पूर्वाचार्योंने मुख्य १७ प्रकारके मरण कहे हैं, उन्हे संक्षेपमें विचारनेसे निम्नलिखित पाँच प्रकार माने गये हैं :

(अ) **पंडित–पंडित मरण :** परमात्मा (अरिहंत) को होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ब) **पंडित–मरण** : आत्मज्ञान सहित संयमीको प्राप्त होता है ।

(क) **बाल–पंडित–मरण** : ज्ञानी, परन्तु संयमी न हो ऐसे सम्यग्दृष्टिको प्राप्त होता है । ये तीन समाधिमरणके प्रकार हैं । अन्य दो प्रकारके मरण निम्नलिखित हैं ।

(ड) **बाल मरण** : सत्पुरुषकी और तत्त्वकी व्यावहारिक श्रद्धा करे, परन्तु पारमार्थिक श्रद्धा न करे और तत्त्वका भावभासन न हुआ हो तो ओघसंज्ञा या लोकसंज्ञासे आराधना किया करे, ऐसे पुरुषके मरणको बालमरण कहते हैं ।

(इ) **बाल–बाल मरण** : परमार्थसे सर्वथा विमुख ऐसे जगतके धर्मरहित जीवोंके मरणको बाल–बालमरण कहा गया है ।

**प्र. ५ : सल्लेखना कब लेनी चाहिए ?**

उ. ५ : अत्यन्त वृद्धावस्था, असाध्य रोग, दुष्काल या घोर उपसर्ग के कारण जब मृत्यु समीप लगे, तब धर्मकी रक्षाके लिए शरीरका त्याग करना चाहिए । इस साधनाको सल्लेखना कहते हैं ।

**प्र. ६ : सल्लेखना द्वारा समाधिमरणकी क्या विधि है ?**

उ. ६ : समाधिमरणमें कषायको क्षीण करना है और साथ ही साथ शरीरको भी कृश करना है । जब समाधिमरणका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्णय करे तब मुमुक्षु शुद्ध मनसे स्नेह, वैर, संग और परिग्रहका त्याग करे और इसके लिए सभी स्वजन–मित्रादिको सच्चे मनसे क्षमा देवे और अपने सर्व दोषों और अपराधोंकी क्षमा मांगे ।

यदि मुनिजनोंका समागम हो सके तो घरका त्याग करके, साधुसमागममें रहे और उपचारसे महाव्रतोंको अंगीकार करे । उतनी शक्ति और संयोग न हो तो घरमें रहकर एक नियत स्थान ग्रहण करके प्रथम मात्र दूध, बादमें केवल पानी और अंतमें चारों प्रकारके आहारका त्याग करे ।

अपनी संपत्तिमेंसे कुछ नियत अंशको धर्मकार्योंमें उपयोग करनेका आदेश दे । शेष संपत्तिका स्वजन–परिवारमें विवेकपूर्वक दान करे । पंच–परमगुरु (परमात्मा और सद्गुरु)का स्मरण करके उनका शरण ग्रहण करे और स्वजनोंसे कहे कि जब मैं प्रभुनामका रटना बंद करदूँ तब आप मुझे परमात्माकी वाणी सुनाना ।

धीरजसे, दृढतासे, सहनशीलतासे और वीरतासे धीरे धीरे शरीर बिल्कुल कृश होनेपर वह महापुरुष इस शरीरको छोड़कर भवांतरको प्राप्त होता है ।

इस प्रकार शांतभाव सहित, आत्मा–परमात्माके स्मरणपूर्वक देह छोड़नेकी सामान्य विधि है, विशेष सत्शास्त्रोंसे जाननी * ।

---

* भगवती–आराधना, भगवतीसूत्र, रत्नकरंडश्रावकाचार, मृत्युमहोत्सव आदि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**प्र. ७ : समाधिमरणका फल क्या है ?**

उ. ७ : मरण साधककी वास्तविक परीक्षा है । यदि समाधिमरण न हुआ तो, साधना मुख्यरूपसे निष्फल गई – ऐसा जानना ।

समाधिमरणसे रत्नत्रयको अन्य भवमें भी साथ ले जाया जाता है; जिससे सद्गति सहित अल्पकालमें मोक्षकी प्राप्ति होती है । ऐसे समाधिमरणके लिए योग्य पूर्वतैयारियाँ और सतत सत्पुरुषार्थ कर्तव्य है ।

❁ ❁ ❁

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## अध्यात्मज्ञान

आत्मा मुख्यतः आत्मस्वभावसे वर्तन करे वह 'अध्यात्म-ज्ञान' । मुख्यतः जिसमें आत्माका वर्णन किया हो वह 'अध्यात्म-शास्त्र' । भाव-अध्यात्मके बिना अक्षर (शब्द)अध्यात्मीका मोक्ष नहीं होता । जो गुण अक्षरोंमें कहे गये हैं वे गुण यदि आत्मामें रहें तो मोक्ष होता है । सत्पुरुषमें भाव-अध्यात्म प्रगट है । सत्पुरुषकी वाणी जो सुनता है वह द्रव्य-अध्यात्मी, शब्द-अध्यात्मी कहा जाता है । शब्द-अध्यात्मी अध्यात्मकी बातें कहते हैं; और महा अनर्थकारक प्रवर्तन करते हैं; इस कारणसे उन्हें ज्ञानदग्ध कहें । ऐसे अध्यात्मियोंको शुष्क और अज्ञानी समझें ।

ज्ञानीपुरुषरूपी सूर्यके प्रगट होनेके बाद सच्चे अध्यात्मी शुष्क रीतिसे प्रवृत्ति नहीं करते, भावअध्यात्ममें प्रगटरूपसे रहते हैं । आत्मामें सच्चे गुण उत्पन्न होनेके बाद मोक्ष होता है । इस कालमें द्रव्यअध्यात्मी, ज्ञानदग्ध बहुत हैं । द्रव्य-अध्यात्मी मंदिरके कलशके दृष्टांतसे मूल परमार्थको नहीं समझते ।

मोह आदि विकार ऐसे हैं कि सम्यग्दृष्टिको भी चलायमान कर देते हैं; इसलिये आप तो समझें कि मोक्षमार्ग प्राप्त करनेमें वैसे अनेक विघ्न हैं । आयु थोड़ी है, और कार्य महाभारत करना है । जिस तरह नाव छोटी हो और बड़ा महासागर पार करना हो, उसी तरह आयु तो थोड़ी है, और संसाररूपी महासागर पार करना है । जो पुरुष प्रभुके नामसे पार हुए हैं उन पुरुषोंको धन्य है ! अज्ञानी जीवको पता नहीं है कि अमुक गिरनेकी जगह है, परंतु ज्ञानियोंने उसे देखा हुआ है । अज्ञानी, द्रव्य-अध्यात्मी कहते हैं कि मुझमें कषाय नहीं है । सम्यक्दृष्टि चैतन्यसंयुक्त है ।

– श्रीमद् राजचन्द्र

(उपदेशछाया-६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## दुःखनिवृत्तिका उपाय

दुःखकी निवृत्तिको सभी जीव चाहते है, और दुःखकी निवृत्ति, जिनसे दुःख उत्पन्न होता है ऐसे राग, द्वेष और अज्ञान आदि दोषोंकी निवृत्ति हुए बिना, होना संभव नहीं है । इन राग आदिकी निवृत्ति एक आत्मज्ञानके सिवाय दूसरे किसी प्रकारसे भूतकालमें हुई नहीं है, वर्तमानकालमें होती नहीं है, भविष्यकालमें हो नहीं सकती । ऐसा सर्व ज्ञानी पुरुषोंको भासित हुआ है । इसलिये वह आत्मज्ञान जीवके लिये प्रयोजनरूप है । उसका सर्वश्रेष्ठ उपाय सद्गुरुवचनका श्रवण करना या सत्शास्त्रका विचार करना है । जो कोई जीव दुःखकी निवृत्ति चाहता हो, जिसे दुःखसे सर्वथा मुक्ति पानी हो उसे इसी एक मार्गकी आराधना किये बिना अन्य दूसरा कोई उपाय नहीं है । इसलिये जीवको सर्व प्रकारके मतमतांतरसे, कुलधर्मसे, लोकसंज्ञारूप धर्मसे और ओधसंज्ञारूप धर्मसे उदासीन होकर एक आत्म-विचार कर्तव्यरूप धर्मकी उपासना करना योग्य है ।

एक बड़ी निश्चयकी बात तो मुमुक्षु जीवको यही करना योग्य है कि सत्संग जैसा कल्याणका कोई बलवान कारण नहीं है, और उस सत्संगमें निरन्तर प्रति समय निवास चाहना, असत्संगका प्रतिक्षण विपरिणाम विचारना, यह श्रेयरूप है । बहुत बहुत करके यह बात अनुभवमें लाने जैसी है ।

– श्रीमद् राजचन्द्र

(पत्रांश–३७५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"હું આત્મા છું,
આત્માનો સેવક છું,
સૌનો મિત્ર છું."

આત્માનંદ

श्री सत्श्रुत सेवा साधना केन्द्र संचालित

**श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र**

कोबा - 382007 (जि. गांधीनगर) गुजरात

फोन : 23276219, 23276483-4 फेक्स : 23276142

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org